ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या-उपासना) विधि

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।

[मनु० ४.९४]

-ऋषियों ने दीर्घसन्ध्या करके लम्बी आयु, मेधा बुद्धि, यश, प्रसिद्धि और ब्रह्मतेज को प्राप्त किया है।

सन्ध्या से पूर्व ज्ञातव्य बातें

ब्रह्मयज्ञ- सन्ध्या-उपासना और स्वाध्याय का नाम ब्रह्मयज्ञ है। प्रतिदिन सन्ध्या-अग्निहोत्र करने के उपरान्त वेदादि मोक्षसाधक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये।

सन्ध्या का अर्थ - "सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या" [पञ्चमहायज्ञ विधि] = भलीभांति ध्यान करते हैं, अथवा ध्यान किया जाये परमेश्वर का जिसमें, वह क्रिया **सन्ध्या** है।

"**उपासना** - जिसको करके ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है; उसको **उपासना** कहते हैं।" [आर्योद्देश्यरत्नमाला]

सन्ध्या का प्रयोजन - हमें मानव जन्म देने वाले और सृष्टि को रचकर हमें सुख देने वाले और हमारा उपकार करने वाले परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना। उसके स्मरण से जीवन को धार्मिक, सुखी-समृद्ध, परोपकारी बनाकर आत्मोन्नति करना। इस प्रकार **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष = पुरुषार्थ चतुष्टय** की सिद्धि करना।

सन्ध्या का लाभ - सुख-शान्ति, आध्यात्मिकता की प्राप्ति व प्रसार। उससे उत्तम व सुन्दर परिवार, समाज एवं राष्ट्र का निर्माण।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि। दीर्घसन्ध्या से दीर्घायु, यश, बुद्धि कीर्ति और ब्रह्मतेज की प्राप्ति।

सन्ध्या का काल - सायं-प्रातः दोनों सन्धि वेलाओं में दोनों समय प्रतिदिन। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त से सूर्योदय पर्यन्त, सायंकाल सूर्यास्त से तारादर्शन तक। दोनों काल का भोजन सन्ध्या के उपरान्त ही करें। प्रातःसन्ध्या यज्ञ से पूर्व और सायंकालीन यज्ञ के उपरान्त करें।

सन्ध्या कौन करें - आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी को परमेश्वर की उपासना करने का अधिकार है।

सन्ध्या के वस्त्र - स्वच्छ, पवित्र एवं सादगीपूर्ण। सुविधापूर्ण एवं ऋतु-अनुकूल। सफेद वस्त्रों की परम्परा अधिक है, क्योंकि उनमें स्वच्छता, पवित्रता और सादगी रहती है। मलीनता शीघ्र दृष्टिगोचर हो जाती है।

सन्ध्या का स्थान - शुद्ध-पवित्र, शान्त-एकान्त-प्रदेश, जहां एकाग्रता हो सके। अथवा घर या नगर आदि में निर्मित उपासनालय।

सन्ध्या का आसन- स्वच्छ-पवित्र और सुखद आसन, जिस पर देर तक बिना कष्ट होकर बैठा जा सके। यह कुश, ऊन, कपास, रेशम व मृगचर्म आदि का हो सकता है।

सन्ध्या में आसन - पद्मासन या सिद्धासन में बैठे, शरीर झुका न हो, सीधा हो। दोनों आंखें बन्द रखकर मुख सामने की ओर हो। हाथों की दोनों हथेलियों या करपृष्ठ को या तो पैरों के घुटनों पर रखें अथवा हथेली पर हथेली रखकर ठीक नाभि के नीचे जमा लेना चाहिये, या दोनों घुटनों के मध्य में सामने रख लेना चाहिये।

सन्ध्या में मुखदिशा - जिधर से शुद्ध वायु आ रही हो, उधर मुख करें। किसी दिशा-विशेष का बन्धन नहीं है।

सन्ध्या का प्रकार - स्नानादि से शरीर की शद्धि करके सन्ध्या के लिए आसन ग्रहण करने के पश्चात् मन को शान्त और एकाग्र करें। इस प्रकार सन्ध्या के लिए उपयुक्त मनोभूमि बनायें, पुनः सन्ध्या आरम्भ करें। सत्य मन-वचन-कर्म से श्रद्धापूर्वक सन्ध्या के अनुष्ठानों को सम्पन्न करें।

मन्त्रों का जप या उच्चारण करते हुए अर्थ विचारपूर्वक

परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना ध्यान लगाकर करें। मन और आत्मा को परमात्मा के ध्यान में स्थिर करें तथा सन्ध्योक्त भावों को आचरण में लाकर जीवन को तदनुकूल बनायें।

सन्ध्यापूर्व तैयारी

शरीरशुद्धि और आसन ग्रहण करना

पूर्ववर्णित दिनचर्या के अनुसार स्नान आदि से शरीर की बाह्य शुद्धि करने के उपरान्त, शुद्ध-स्वच्छ वस्त्र धारण करके, उत्तम आसन पर पद्मासन या सुखासन से बैठे।

अन्तःकरण की शुद्धि

राग, द्वेष, सत्य, चिन्ता, शोक आदि भावों का त्याग करके अन्तःकरण की शुद्धि करें। मन को शान्त और एकाग्र करें, क्योंकि इनके बिना सन्ध्या में ध्यान नहीं लग सकता। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि "शरीर शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि आवश्यक एवं प्रमुख है। यही सर्वोत्तम और परमेश्वर की प्राप्ति का साधन है। जल से तो शरीर के ऊपरी अंग ही शुद्ध होते हैं, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए तो सत्याचरण, ज्ञान, तप आदि का अनुष्ठान करना चाहिये"। महर्षि मनु ने कहा है -

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिज्ञनिन शुद्धयति।।

[मनु० ५.१०९]

अर्थात् जल से केवल शरीर के अंगों की शुद्धि होती है। मन सत्याचरण से शुद्ध होता है। आत्मा विद्याभ्यास एवं योगाभ्यास से शुद्ध होती है तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

मार्जन

मन को शान्त और एकाग्र करने के उपरान्त कुशा वा हाथ से

मार्जन करे = अंगों पर पानी के छींटे दे। इसका प्रयोजन यह है कि "परमेश्वर का ध्यान करते समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे। यदि आलस्य न हो, तो न करे।" [पञ्चमहायज्ञ विधि/सत्यार्थप्रकाश - समुल्लास ३]

मार्जन क्रिया करने का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी है। इस प्रकार उपासक इस बात से सावधान रहता है कि कहीं आलस्य प्रभावी न हो जाये! सावधानी से आलस्य से बचाव रहता है।

प्राणायाम

मार्जन के पश्चात् प्राणायाम करें। प्राणायाम का प्रयोजन भी मन को एकाग्र, शान्त और सन्ध्या के लिए उपयुक्त बनाना है, जिससे सन्ध्योपासन पूर्ण निष्ठा से हो सके। महर्षि ने लिखा है- "इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे"। [पञ्चमहायज्ञ विधि]

प्राणायाम के कई भेद हैं। उनमें प्रथम है - अन्दर के श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालकर यथाशक्ति रोकें, फिर धीरे-धीरे भीतर ले जायें और भीतर थोड़ा रोकें। यह एक प्राणायाम हुआ। ऐसे कम से कम तीन प्राणायाम करें और इन्द्रियों को बाह्य विषयों से खींचकर मन को एकाग्र करें।

गायत्री द्वारा शिखाबन्धन

इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें और तत्पश्चात् शिखाबन्धन करें। शिखाबन्धन क्रिया बाहरी रूप से शिखा को व्यवस्थित रूप से विधिवत् बांधने के लिए है और प्रतीकार्थ रूप में विचारों में बिखरे मन को संयमित करने के लिए है। गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए अर्थ विचारपूर्वक प्रार्थना भी करें। यह संकेत महर्षि के इस वाक्य से मिलता है- "और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करे"। [पञ्चमहायज्ञ विधि]

अर्थ सहित गायत्री मन्त्र निम्न है-

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

[यजु० अ० ३६.। मन्त्र ३]

अर्थ- (**ओम्**) परमात्मा सबका रक्षक है। परमात्मा का वह मुख्य नाम है, जिसके साथ सभी नाम लग जाते हैं, जिससे ईश्वर के सब नामों का बोध होता है। (**भः**) सब प्राण = जीवनस्वरूप, प्राणों से भी प्रिय (**भुवः**) सब दुःखों से छुड़ाने वाला, (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप है और सबको सब सुखों की प्राप्ति कराने हारा है। (**तत्**) उस (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक, प्रकाशक परम ऐश्वर्यवान् (**वरेण्यम्**) कामना करने योग्य, अतिश्रेष्ठ, (**भर्गः**) शुद्ध, विज्ञानस्वरूप और अज्ञान, दोष क्लेश आदि को भस्म करने वाले (**देवस्य**) दिव्यगुणों से युक्त, आनन्ददाता परमेश्वर का (**धीमहि**) हम ध्यान करते हैं, उसको हृदय में धारण करते हैं (**यः**) जो वह धारण और ध्यान किया हुआ परमेश्वर (**नः धियः**) हमारी धारणावती बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरित करे।

इस प्रकार इन क्रियाओं के द्वारा, सन्ध्योपासन के लिए मन और आत्मा में उपयुक्त दृढ़भूमि = वातावरण बनाकर आचमनपूर्वक सन्ध्योपासन के अनुष्ठान आरम्भ करें -

आचमन मन्त्र

आचमन विधि - निम्न मन्त्र के उच्चारणपूर्वक, सर्वव्यापक, सुखदाता परमेश्वर का ध्यान करते हुए उससे सुख की कामना-याचना करें और उच्चारण के अनन्तर तीन बार आचमन करें।

आचमन क्रिया - आचमन करने के लिए दाहिनी हथेली में इतना जल लें, जो कण्ठ के नीचे हृदय (छाती) तक पहुँचे; न उससे कम रहे न अधिक। हथेली के मूल और मध्यभाग में ओष्ठ लगाकर उस जल का पान करें। आचमन करते समय मुंह से किसी प्रकार का शब्द न करें। तीन आचमन करने के बाद उच्छिष्ट हाथ का प्रक्षालन कर लें। आचमन का प्रयोजन कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति करना है। यदि जल उपलब्ध न हो तो उसके बिना ही उपासना करें।

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।

[यजु० अ० ३६. । मं० १२]

अर्थ- (**देवीः**) दिव्यगुणों से युक्त, सबका प्रकाशक, सबको आनन्द देने वाला (**आपः**) सर्वव्यापक परमेश्वर (**अभि + इष्टये**) मनोवांछित लौकिक सुख-आनन्द की प्राप्ति के लिए और (**पीतये**) पूर्णानन्द = मोक्ष की प्राप्ति के लिए तथा पूर्ण रक्षा के लिए (**नः**) हम को (**शम्**) कल्याणकारी (**भवन्तु**) होवे, और (**नः**) हम पर (**शंयोः**) सुख-शान्ति की (**अभि-स्रवन्तु**) चारों ओर से वर्षा करे। हम परमपिता परमेश्वर से यह प्रार्थना करते हैं।

अंगस्पर्श मन्त्र

अंगस्पर्श विधि - निम्न मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक परमात्मा से शरीरांगों एवं इन्द्रियों की स्वस्थता, दृढ़ता एवं निर्दोषता के लिए प्रार्थना करते हुए मन्त्र वर्णित अंगों का जलयुक्त अंगुलियों से स्पर्श करें।

अंगस्पर्श क्रिया - अंगस्पर्श के लिए, पात्र में से बायीं हथेली में थोड़ा जल लें, फिर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को मिलाकर उस जल से स्पर्श करें, पुनः उस जल से गीली अंगुलियों से अंगों का स्पर्श करें। प्रत्येक अंग के स्पर्श से पूर्व उंगुलियों का जल से स्पर्श करायें।

मन्त्रों में जहाँ दो समान इन्द्रियों के स्पर्श का उल्लेख है, वहाँ पहले इन्द्रिय की दाहिनी ओर और फिर इन्द्रिय की बाईं ओर स्पर्श करना चाहिये।

ओं वाक् वाक्। इसका उच्चारण करते हुए पहले मुख के दायें भाग का, पश्चात् बायें भाग का स्पर्श करें।
ओं प्राणः प्राणः। इससे दाहिने और बायें नासिका भाग का।
ओं चक्षुः चक्षुः। इससे दाहिने और बायें नेत्र का।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। इससे दाहिने और बायें कान का।

ओं नाभिः। इससे नाभि का।
ओं हृदयम्। इससे हृदय का (हृदय छाती के वाम भाग में स्थित है)
ओं कण्ठः। इससे कण्ठ का।
ओं शिरः। इससे सिर (मस्तक) का।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। इससे दाहिनी और बायीं भुजा का।
ओं करतलकरपृष्ठे। इससे दोनों हथेलियों और उनके पृष्ठभाग का स्पर्श करें।

अर्थ- (**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरी (**वाक्**) वाग् इन्द्रिय = वाणी, और (**वाक्**) रसना इन्द्रिय, पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवती एवं निर्दोष बनी रहें।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरी (**प्राणः**) प्राण शक्ति, जो कि प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनंजय नामक दश प्राणों के रूप में समस्त शरीर में व्याप्त होकर जीवन को चला रही है, वह और (**प्राणः**) घ्राणेन्द्रिय, पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवती एवं निर्दोष बनी रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरे (**चक्षुः चक्षुः**) दायें और बायें दोनों नेत्र स्वस्थ, बलवान् एवं निर्दोष बने रहें।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरे (**श्रोत्रम् श्रोत्रम्**) दायें और बायें दोनों कान पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवान् एवं निर्दोष बने रहें।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरी (**नाभिः**) शरीर और नस-नाड़ियों का केन्द्र स्थान नाभि पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवती, एवं निर्दोष बनी रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरा (**हृदयम**) रक्त संचालक अंग हृदय पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवान् एवं निर्दोष बना रहे और मेरा हृदय = आत्मा बलवान् एवं निर्दोष बना रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! (**कण्ठः**) मेरा कण्ठ पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवान् एवं दोषरहित बना रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मेरा (**शिरः**) मस्तिष्क एवं उसका निवास स्थान पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवान् एवं निर्दोष बना रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर ! मैं (**बाहुभ्याम्**) दोनों भुजाओं से (**यशः-**

बलम्) यश और बल प्राप्त करूँ अर्थात् दोनों भुजाएं पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवती एवं निर्दोष बनी रहें, जिनसे मुझे यश और बल की प्राप्ति होती रहे।

(**ओम्**) हे ईश्वर! मेरे (**करतलकरपृष्ठे**) हाथ के तल और हाथ के पृष्ठभाग पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ, बलवान् एवं निर्दोष बने रहें, जिनसे मझे यश और बल प्राप्त होता रहे।

मार्जन मन्त्र

मार्जन विधि - निम्न मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक ईश्वर से शरीरांगों की स्वस्थता, बलवत्ता और निर्दोषता की प्रार्थना करते हुए उंगुलियों से उन अंगों पर जल का मार्जन करें = जल छिड़कें = छींटे दें।

मार्जन क्रिया - मार्जन के लिए, पात्र में से बायें हाथ की हथेली में थोड़ा जल लें, फिर दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को मिलाकर उनके अग्रभाग को उस जल से स्पर्श कराके, दायें हाथ के अंगूठे की सहायता से अंगों पर मार्जन करें = जल के छीटें दें।

ओं भूः पुनातु शिरसि। इसके उच्चारणपूर्वक शिर पर मार्जन करें।
ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। इससे पहले दायें, फिर बायें नेत्र पर।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। इससे कण्ठ पर।
ओं महः पुनातु हृदये। इससे हृदय पर।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। इससे नाभि पर।
ओं तपः पुनातु पादयोः। इससे पहले दायें, फिर बायें पैर पर।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। इससे पुनः शिर पर।
ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र। इससे सारे शरीर पर।

अर्थ- (**ओम् भूः**) सदा-सर्वदा वर्तमान रहने वाला प्राण-रूप प्रभु (**शिरसि पनातु**) मेरे शिर में पवित्रता करे अर्थात शिर में स्थित बद्धि को पवित्र रखे। उससे मैं पवित्र चिन्तन एवं निर्णय करूँ।

(**ओम् भुवः**) सबका आश्रयस्थान और सबके दुःखों को दूर करने वाला ईश्वर (**नेत्रयोः पुनातु**) मेरे दोनों नेत्रों में पवित्रता करे अर्थात् मेरी दृष्टि को पवित्र रखे।

(**ओम् स्वः**) आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देने वाला परमात्मा (**कण्ठे**) मेरे कण्ठ में (**पुनातु**) पवित्रता करे अर्थात् मैं सत्य और पवित्र भाषण करूं।

(**ओम् महः**) सबसे महान् और सबसे अधिक पूज्य परमात्मा (**हृदये पुनातु**) मेरे हृदय में पवित्रता करे अर्थात् मेरा हृदय और मेरी आत्मा पवित्र एवं उदार बनें, महान् बनें।

(**ओम् जनः**) सबका उत्पादक परमात्मा (**नाभ्याम् पुनातु**) मेरी नाभि में पवित्रता करे अर्थात् मेरे जनन-संस्थान में पवित्रता बनी रहे।

(**ओम् तपः**) तपस्वरूप, दुष्टों को सन्तप्त एवं दोषों का विनाशक परमात्मा (**पादयोः पुनातु**) मेरे दोनों पैरों में पवित्रता करे अर्थात् मेरा चाल-चलन = आचरण पवित्र रहे।

(**ओम सत्यम्**) सत्यस्वरूप और सत्याचरणप्रेरक अविनाशी परमात्मा (**पुनः**) फिर = बार-बार (**शिरसि पुनातु**) मेरे शिर = बुद्धि में पवित्रता करे अर्थात् मेरी बुद्धि को विशेष रूप से और सदैव पवित्र रखे, क्योंकि बुद्धि की पवित्रता से सभी इन्द्रियों की पवित्रता बनी रहती है।

(**ओम् खं ब्रह्म**) सर्वव्यापक, सर्वाधिक शक्तिशाली परमात्मा (**सर्वत्र पुनातु**) मेरे सम्पूर्ण शरीर को या सब अंग-प्रत्यंगों में पवित्रता करे, उनमें पवित्रता बनाये रखे।।

प्राणायाम मन्त्र

प्राणायाम विधि - निम्न मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक ईश्वर के नामों का ध्यान करें और उच्चारण के पश्चात् प्राणायाम करें। प्राणायाम करते समय भी इस मन्त्र का अर्थ विचारपूर्वक मन में जपते रहें।

प्राणायाम क्रिया - प्राण = श्वास के नियन्त्रण और विस्तार करने की क्रिया को **प्राणायाम** कहते हैं। भीतर के वायु को नासिका

से वेगपूर्वक बाहर निकालकर श्वास को यथाशक्ति वहीं रोकें, फिर धीरे-धीरे अन्दर ग्रहण करके वैसे ही फिर बाहर निकालें और रोकें। यह **रेचक** या **बाह्य विषय** नामक प्राणायाम है।

इसी प्रकार श्वास को अन्दर ग्रहण करके उसे अन्दर ही यथाशक्ति रोकें। फिर धीरे-धीरे बाहर निकालकर वैसे ही पुनः अन्दर लेकर रोके। यह **आभ्यन्तर** या **कुम्भक** प्राणायाम है।

चलते हुए श्वास को जहाँ का तहाँ रोक देना और यथाशक्ति उसे रोके रखना, यह **स्तम्भवृत्ति** नामक प्राणायाम है।

इनमें से किसी भी एक प्राणायाम या तीनों को करें। कम से कम तीन प्राणायाम करें और अधिक यथाशक्ति करें। इस प्रकार आत्मा के स्थिर करके उसमें परमेश्वर का ध्यान करें और उसमें मन को मग्न करें।

ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम् ।

[तै० प्र० १०. । अनु० २७।।]

अर्थ- (**ओम् भूः**) हे ईश्वर ! आप सदा-सर्वदा विद्यमान रहने वाले हैं, सत् हैं, प्राणरूप एवं प्राणों से भी प्रिय हैं।

(**ओम् भुवः**) हे ईश्वर! आप सबके आश्रय हैं और सबके दुःखों को दूर करने वाले हैं।

(**ओम् स्वः**) हे ईश्वर! आप सुखस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप हैं। आप ही इस जगत् के धारणकर्ता हैं।

(**ओम् महः**) हे ईश्वर! आप सबसे महान् हैं, सबके पूज्य हैं, एकमात्र उपासनीय हैं। महामहिमाशाली हैं।

(**ओम् जनः**) हे ईश्वर! आप ही सकल जगत् के उत्पादक हैं। सबको जीवन देने वाले हैं।

(**ओम् तपः**) हे ईश्वर! आप तपस्वरूप हैं। दुष्टों के सन्तापक एवं दुष्ट भावनाओं के विनाशक हैं। समस्त ऐश्वर्य से परिपूर्ण हैं।

(**ओम् सत्यम्**) हे ईश्वर ! आप सत्यस्वरूप हैं, अविनाशी हैं। श्रेष्ठों के द्वारा उपासनीय एवं वन्दनीय हैं। सत्याचरण के प्रेरक

हैं। मैं इन गुणों से युक्त ईश्वर की उपासना करता हूँ और उसकी प्रेरणा से समस्त दोषों का परित्याग करता हूँ।

अघमर्षण मन्त्र

निम्न मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक परमेश्वर को सृष्टिकर्ता, सृष्टिनियन्ता, सृष्टिहर्ता, सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र-सर्वदा सब जीवों के कर्मों का द्रष्टा मानकर, उसके इस स्वरूप का चिन्तन करते हुए पाप की ओर से अपने मन और आत्मा को हटायें तथा उधर न जाने दें। इनका चिन्तन करते हुए रात्रि-अवधि में किये गये अधों = पापों या दोषों का प्रातःकाल, तथा दिन में किये अधों का सायंकाल मर्षण = दरीकरण करें -

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रायजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।

[ऋ० १०.१९०.१]

अर्थ- परमात्मा के (**अभि + इद्धात्**) सब ओर प्रदीप्त ज्ञानमय (**तपसः**) अनन्त सामर्थ्य से (**ऋतम्**) सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य यथार्थ = सत्यज्ञान अर्थात् ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद के रूप में प्राप्त ज्ञान का भण्डार (**च**) और (**सत्यम्**) सत्-रज-तम रूप प्रकृति और उसका कार्यरूप समस्त चर-अचर जगत् (**अधि + अजायत**) पूर्वकल्प के समान उत्पन्न हुआ। (**ततः**) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से (**रात्री**) महाप्रलयरूप रात्रि (**अजायत**) उत्पन्न हुई (**ततः**) उसके पश्चात्। (**समुद्र + अर्णवः**) अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थ समुद्र उत्पन्न हुआ अर्थात् अन्तरिक्ष से लेकर पृथिवी तक विद्यमान समस्त स्थूल पदार्थ बने।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिष्तो वशी।।

[ऋ० १०.१९०.२]

अर्थ- (**समुद्रात् + अर्णवात् + अधि**) अन्तरिक्ष से लेकर पृथिवीस्थ समस्त पदार्थों के पश्चात् (**संवत्सरः**) क्षण, मुहूर्त, प्रहर, मास, वर्ष आदि काल (**अजायत**) उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् (**विश्वस्य वशी**) संसार को वश में रखने वाले उस परमात्मा ने (**मिषतः**) सहज रूप से (**अहः-रात्राणि**) दिन और रात्रि के विभागों को (**विदधत्**) बनाया।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवे च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।

[ऋ० १०।१९०। ३]

अर्थ-(**धाता**) जगत् को उत्पन्न कर धारण, पोषण, नियमन करने वाले परमात्मा ने (**सूर्य-चन्द्रमसौ**) सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों-उपग्रहों को (**च**) और (**दिवम्**) द्युलोक (**पृथिवीम्**) पृथिवी लोक (**च**) और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष आदि लोकों को (**अथ स्वः**) तथा ब्रह्माण्ड में जितने अन्य लोक-लोकान्तर, ग्रह-उपग्रह, आदि हैं, उनको (**यथापूर्वम्**) जैसे पूर्व सृष्टि में थे वैसे ही इस सृष्टि में (**अकल्पयत्**) बनाया।

इस प्रकार समस्त जगत् को रचकर वह परमेश्वर सबके पाप-पुण्यों का निरीक्षण करता है और उन्हें कर्मानुसार फल प्रदान करता है।

(पुनः आचमन करने हेतु) आचमन मन्त्र

विधि - अघमर्षण मन्त्रों के द्वारा ईश्वर के ध्यान और अपने अधों = दोषों, पापों के मर्षण = विश्लेषण पूर्वक उन्हें दूर करने के पश्चात् पूर्व आचमन मन्त्र के साथ प्रदर्शित विधि के अनुसार, निम्न आचमन मन्त्र से पुनः दाहिनी हथेली में जल लेकर तीन आचमन करें -

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिसवन्तु नः ।।

[यजु० अ० ३६ । मं० १२]

(अर्थ आचमन मन्त्र में देखें)

मन्त्रार्थ विचारपूर्वक ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना

उपासना विधि - तत्पश्चात् गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थों पर मन से विचार करते हुए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें। प्राणायाम भी करें और प्राणायामपूर्वक उपासना भी करें। उसकी विधि निम्न प्रकार है -

स्तुति - परमेश्वर के गुणों और उपकारों का, उसके नामों और दिव्य कर्मों का स्मरण-ध्यान करना **स्तुति** है।

प्रार्थना - सब उत्तम कामों में ईश्वर की सहायता की कामना करना **प्रार्थना** है। मनुष्य निर्बल या अल्पसामर्थ्य वाला और परमेश्वर सर्वसामर्थ्यवान् है। सामर्थ्यवान् से ही प्रार्थना होती है, अतः वही प्रार्थनीय है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में -

"पश्चात् प्रार्थना करें, अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्य शरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता; जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके जगत् का उपकार किया है, वैसे हम लोग भी सबका उपकार करें। इस काम में परमेश्वर हमको सहाय करे कि जिससे हम लोग सबको सदा सुख देते रहें।"

[पञ्चमहायज्ञ विधि सन्ध्योपासन प्रकरण]

उपासना - ईश्वर के ध्यान में और स्वरूप में अपनी आत्मा को मग्न करना **उपासना** है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं- तदनन्तर ईश्वर की उपासना करें। सो दो प्रकार की है- एक, **सगुण** और दूसरी, **निर्गुण**। जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सबका उत्पादक, धारण करने हारा, मंगलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का देने वाला, सबका पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा, न्यायाधीश है। इत्यादि ईश्वर के गुण-विचारपूर्वक उपासना करने का नाम **सगुणोपासना** है।

तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर

अनादि, अनन्त है, जिसका आदि और अन्त नहीं। अजन्मा, अमृत्यु, जिसका जन्म और मरण नहीं। निराकार, निर्विकार, जिसका आकार और जिसमें कोई विकार नहीं। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है। जिसका परिमाण, छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता। जो ह्रस्व, दीर्घ, और शोकातुर कभी नहीं होता। जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष, और शोक कभी नहीं होते। जो उलटा काम नहीं करता, इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना, वह **निर्गुणोपासना** कहाती है।

इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के, यथाशक्ति बाहर ही रोक के पुनः धीरे-धीरे भीतर ले के पुनः बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके, आत्मा-बीच में जो अन्तर्यामी रूप से ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है, उसमें अपने आपको मग्न करके, अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये। जैसे, गोताखोर जल में डुबकी मार के शुद्ध हो के बाहर आता है, वैसे सब जीव लोग अपने आत्माओं को शद्ध, ज्ञान-आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें।

[पञ्चमहायज्ञ विधि सन्ध्योपासन प्रकरण]

मनसा-परिक्रमा मन्त्र

उद्देश्य - इन मन्त्रों में, आलंकारिक वर्णन द्वारा, संसार में प्रचलित व्यवहार के दृष्टिकोण से परमेश्वर के सर्वव्यापक , सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी आदि स्वरूप का वर्णन किया गया है। सभी दिशाओं का परिगणन परमेश्वर के सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान होने का बोध कराने के लिए है। द्वेषभाव वाले व्यक्ति को परमात्मा के मुख में रखने का वर्णन उसके न्यायकारी और कर्मानुसार फल प्रदान करने के गुण का बोध कराने के लिए है। मनसा-परिक्रमा का अर्थ है - **मन के द्वारा सर्वत्र परिक्रमण = विचरण करना और प्रभु को सर्वत्र व्यापक जानना।**

विधि - इन मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक सर्वव्यापक,

सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, कर्मानिसार फलदाता प्रभ का ध्यान करते हए उसकी **अग्नि**, **इन्द्र**, **वरुण** आदि नामों से स्तुति करें और द्वेषभाव का त्याग करके अहिंसा की सिद्धि करें। परमात्मा को बाहर-भीतर सर्वत्र जानकर निर्भय, निःशंक, उत्साही, आनन्दित और पुरुषार्थी बने रहें। इस प्रकार मन को शुद्ध बनायें।

ओं प्राची दिग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नम रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वूयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।१।।

अर्थ- (**प्राची दिक**) जिस ओर मुख करके उपासक उपासना कर रहा है, वह **प्राची** दिशा है, अथवा सूर्योदय की दिशा प्राची दिशा है, (**अग्निः + अधिपतिः**) अग्नि = प्रकाशस्वरूप, ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही इसका स्वामी है। (**असितः + रक्षिता**) बन्धनरहित और अज्ञानजन्य बन्धनों से रहित वह परमात्मा सब प्रकार से हमारी रक्षा करने वाला है। (**आदित्याः + इषवः**) सूर्य-किरणे अथवा ज्ञान की किरणें बाणतुल्य हैं, जो अज्ञानान्धकार की नाशक हैं और हमारी रक्षा की साधन हैं। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम नमस्कार करते हैं। **(अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। **(यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को **(वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

**दक्षिण दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।२।।**

अर्थ- (**दक्षिणा दिक्**) जो हमारे दाहिनी ओर है अथवा जो दक्षिण दिशा है, (**इन्द्रः + अधिपतिः**) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ही उसका स्वामी है। (**तिरश्चिराजिः + रक्षिता**) तिर्यक्योनि के प्राणियों अर्थात् कीट-पतंग, सर्प, वृश्चिक आदि की राजि = पंक्ति से रक्षा करने वाला वह परमेश्वर है अर्थात् तिर्यक्योनि की श्रृंखला के प्राणियों की योनि में जाने से वही या उसकी भक्ति ही रक्षा करती है। (**पितरः + इषवः**) पितर = ज्ञानी लोग बाणतुल्य हैं, जो ज्ञान द्वारा कुटिलतायुक्त कर्मों से हमें दूर रखते हैं और उत्तम कर्मों को ग्रहण कराते हैं। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम नमस्कार करते हैं। **(अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। **(यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को **(वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

**प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।३।।**

अर्थ- (**प्रतीची दिक्**) जो पृष्ठभाग में है अथवा जो पश्चिम

दिशा है, (**वरुणः + अधिपतिः**) सबसे उत्तम, सबके द्वारा वरणीय और सबसे महान् ईश्वर ही उसका स्वामी है। (**पदाकूः + रक्षिता**) विषधर या भयंकर ध्वनि करने वाले प्राणियों से या ऐसी भावनाओं से रक्षा करने वाला है अर्थात् इनकी योनियों में जाने से बचाने वाला है (**अन्नम् + इषवः**) भोज्य-पेय आदि प्राणदायक पदार्थ एवं ओषधियां बाणतुल्य हैं, जो हमारे जीवन की रक्षा करती हैं और रोगों का नाश करती हैं। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम नमस्कार करते हैं। **(अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। **(यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को **(वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।४।।

अर्थ- (**उदीची दिक्**) जो हमारे बाईं ओर की दिशा है, अथवा जो उत्तर दिशा है, (**सोमः + अधिपतिः**) शान्ति, आनन्द आदि गुणों से युक्त और आनन्दप्रद परमात्मा ही उसका स्वामी है। (**स्वजः + रक्षिता**) वह अजन्मा ईश्वर सबका रक्षक है। (**अशनिः + इषवः**) विद्युत् जिसके बाणतुल्य हैं अर्थात् उसकी सर्वत्र व्याप्त शक्तियां श्रेष्ठों को सुख-आनन्द देकर रक्षा करती हैं और दुष्टों का विनाश करती हैं। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम

नमस्कार करते हैं। (**अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। (**यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को (**वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुधू इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।५।।

अर्थ- (**ध्रुवा दिक्**) जो अपने नीचे की ओर ध्रुवा नामक दिशा है, (**विष्णुः + अधिपतिः**) सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर ही उसका स्वामी है। (**कल्माषग्रीवः + रक्षिता**) हरित रंग वाले वृक्ष आदि जिसकी ग्रीवा के समान हैं, वह वृक्ष-वनस्पति आदि का उत्पादक परमेश्वर ही हमारा रक्षक है, अथवा पापों, दोषों बुराइयों को निगलने वाला, नष्ट या दूर करने वाला ईश्वर ही कल्माषग्रीव है, वही हमारा रक्षक है। (**वीरुधः + इषवः**) वृक्ष-वनस्पतियां, ओषधियां आदि जिसके बाणतुल्य हैं अर्थात् जीवनदायक और रक्षक हैं; दुर्बलता, रोग आदिनाशक हैं। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। (**यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे

द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को **(वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

उर्ध्वा दिग्बृहस्पतिधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।६।।

[अथर्व० कां० ६ । सू० २७ । मं० १-६]

अर्थ- (**उर्ध्वा दिक्**) जो अपने ऊपर की दिशा है वह उर्ध्वा नामक दिशा है, (**बृहस्पतिः+ अधिपतिः**) वाणी, वेदशास्त्र और इस बृहत् ब्रह्माण्ड का पालक परमेवर ही उसका स्वामी है। (**श्वित्रः + रक्षिता**) वही ज्ञानमय, मेघस्वरूप परमात्मा हमारा रक्षक है। (**वर्षम् + इषवः**) वर्षाएं जिसके बाणतुल्य हैं अर्थात् ज्ञानवर्षा, आनन्दवर्षा, ज्ञान व सुख की साधक और अज्ञान और दुःख की नाशक है। (**तेभ्यः + नमः**) ईश्वर के इन सब गुणों को हम नमस्कार करते हैं। **(अधिपतिभ्यः + नमः**) ईश्वर के स्वामित्वपरक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**रक्षितृभ्यः + नमः**) ईश्वर के रक्षक गुणों को हम नमस्कार करते हैं। (**एभ्यः इषुभ्यः + नमः अस्तु**) श्रेष्ठों की रक्षा और पापियों के पीड़ा-साधक बाणतुल्य जो उपाय हैं, हम उनको नमस्कार करते हैं। **(यः + अस्मान् द्वेष्टि**) जो कोई हमसे द्वेष करता है, और (**वयं यं द्विष्मः**) हम जिसे द्वेष करते हैं, द्वेषभाव रखते हैं (**तम्**) उस व्यक्ति या द्वेषभाव को **(वः + जम्भे दध्मः**) आपके जम्भ = मुख अर्थात् न्यायव्यवस्था में रखते हैं। अभिप्राय यह है कि जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई अन्य है। अथवा मैं हूँ, उसको द्वेष भाव का फल देने हेतु आपको सौंपते हैं, आप ही कर्मानुसार फल दें। हम द्वेषभाव के वशीभूत होकर बदले की कोई

क्रिया मानसिक, वाचिक या शारीरिक रूप से नहीं करेंगे।

उपस्थान मन्त्र

विधि - आचमन के द्वारा शरीर को, **इन्द्रियस्पर्श** और **मार्जन** मन्त्रों से इन्द्रियों को, **प्राणायाम** से मन को, **अघमर्षण** मन्त्रों से बुद्धि को और **मनसापरिक्रमा** मन्त्रों से चित्त को शुद्ध, शान्त और स्थिर करके **उपस्थान** मन्त्रों के उच्चारण और अर्थ विचारपूर्वक सर्वव्यापक ईश्वर की उपासना करते हुए उपस्थान करें अर्थात् ईश्वर के समीप बैठा हुआ अनुभव करें।

उप उपसर्ग पूर्वक '**ष्ठा-गतिनिवृत्तौ**' धातु से **उपस्थान** शब्द बनता है, जिसका अर्थ है **उप** = समीप, **स्थान** = बैठना। अपने चित्त को स्थिर करके परमेश्वर के समीप बैठा हुआ स्वयं को अनुभव करना। मनसापरिक्रमा मन्त्रों में मन चहुँ ओर परिक्रमण कर ईश्वर के अनन्त ऐश्वर्य, शक्ति, व्यापकता में आनन्द अनुभव कर रहा था। यहां उसे आत्मा में स्थिर करना है और स्वयं को प्रभु के आश्रय में स्थित करना है। मन्त्र निम्न हैं -

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।।१।।

[यजु० अ० ३५ । मं० १४।।]

अर्थ- हे परमेश्वर ! (**वयम्**) हम सब (**तमसः + परि**) अज्ञानान्धकार से पृथक् रहने वाले, (**स्वः**) आनन्दस्वरूप और स्वयं प्रकाशस्वरूप, (**उत्तरम्**) प्रलय के अनन्तर भी सदा वर्तमान, (**देवत्रा देवम्**) देवों में भी देव = देवाधिदेव, अर्थात् आनन्द और प्रकाश देने वालों के आनन्ददाता और प्रकाशक (**सूर्यम्**) चराचर जगत् के संचालक, प्रेरक (**उत्तमम्**) सर्वोत्तम (**ज्योतिः**) ज्ञानस्वरूप आपको (**उत् + अगन्म**) उत्कृष्ट श्रद्धा से प्राप्त हुए हैं।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ।।२।।

[यजु० अ० ३३ । मं० ३१ ।।]

अर्थ- (**उ**) निश्चय से (**केतवः**) किरणें या पताकाएं अर्थात् सृष्टि के सभी पदार्थ, संचालक नियम, गुण और वेदों की ऋचाएं जो कि ईश्वर की सत्ता की बोधक हैं, या बुद्धियां (**त्यम्**) उस (**जातवेदसम्**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ का वेत्ता, वेदों का रचयिता जो सर्वज्ञ परमेश्वर है, उसको और (**देवम्**) दिव्य गुणयुक्त देवाधिदेव (**सूर्यम्**) सकल जगत् के उत्पादक और प्रकाशक ईश्वर को (**विश्वाय दशे**) पूर्णरूप से दिखाने या ज्ञान कराने के लिए (**उद्-वहन्ति**) भलीभांति जनाती हैं और प्राप्त कराती हैं। हम उसको प्राप्त करते हैं।

चित्रं देवानामुर्दगानीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।३।।

[यजु० अ० ७ । मं० ४२ ।।]

अर्थ- वह परमात्मा (**चित्रम्**) पूज्य, कामना करने योग्य और अद्भुत = विलक्षण स्वरूप और शक्ति से युक्त है (**देवानाम् अनीकम्**) दिव्यगुण स्वभाव वाले विद्वानों का परम उत्तम बल है, आश्रय है। विद्वज्जन उसी से बल प्राप्त करते हैं। (**उत् + अगात्**) वह अच्छी प्रकार हमारी आत्मा में प्रकाशित होवे अर्थात् प्रकाशित हुआ है। वह (**मित्रस्य**) रागद्वेषरहित, मित्रभावना वाले मनुष्य का = उपासक का (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ आचरण के कारण जो वरणीय = प्रशंसनीय या चाहने योग्य है, ऐसे उपासक का (**अग्नेः**) उत्तम ज्ञान वाले उपासक का (**चक्षुः**) मार्गदर्शक है। वह (**द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्षम्**) द्युलोक, पृथिवीलोक, आकाश आदि लोक-लोकान्तरों को (**आ + अप्राः**) रचकर और उनमें व्याप्त होकर धारण कर रहा है। वह (**सुय्यः**) सकल जगत् का उत्पादक और प्रकाशक है, (**जगतः च तस्थुषः आत्मा**) चेतन और स्थावर जगत् का आत्मा है, उसमें व्याप्त होकर संचालन करने वाला है। (**स्वाहा**) मैं सत्य, मधुर, कोमल वाणी और हृदय से उस प्रभु का स्मरण और गुणगान करता हूँ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।४।।

[यजु० अ० ३६ । मं० २४]

अर्थ- (**तत्**) वह मेरा उपास्य (**चक्षुः**) सबका मार्गदर्शक और सबका द्रष्टा, (**देवहितम्**) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले विद्वानों का हितकारी है, (**शुक्रम्**) शुद्ध एवं ज्ञानस्वरूप, पवित्र एवं पवित्रकर्ता है, (**पुरस्तात् उच्चरत्**) सम्मुख उपस्थित हुआ है, आत्मा में उसका अनुभव हुआ है। उसको (**शरदः शतं पश्येम**) सौ वर्ष तक हम देखें, (**शरदः शतं जीवेम**) उसको देखते हुए सौ वर्ष तक जीयें, (**शरदः शतं श्रृणुयाम**) उसको सौ वर्ष तक सुनें, (**शरदः शतं प्रब्रवाम**) सौ वर्ष तक उसका प्रवचन करें, (**शरदः शतम् अदीनाः स्याम**) उसी की उपासना से हम सौ वर्ष तक अदीन = स्वतन्त्र, स्वाभिमानी और समृद्ध बने रहें (**च**) और (**शरदः शतात् भूयः**) सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हम देखें, जीयें, सुनें, प्रवचन करें और स्वतन्त्र रहें। इस प्रकार हम प्रभु की उपासना करते हुए सौ वर्ष और उससे भी अधिक वर्षों तक जीयें और समर्थ रहें।

गायत्रीमन्त्र

तदनन्तर गायत्री मन्त्र के उच्चारण और अर्थ विचार पूर्वक परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें -

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्।।

[यजु अ० ३६ । मं० ३]

अर्थ- (**ओम्**) सबका रक्षक परमात्मा। सदा, सर्वत्र सबका रक्षक होने से **ओम्** यह परमात्मा का मुख्य नाम है, जिसके साथ सब नाम लग जाते हैं, जिससे ईश्वर के सब नामों का बोध होता

है। (**भूः**) सबका प्राण = जीवनस्वरूप, प्राणों से भी प्रिय, (**भुवः**) सब दुःखों से छुड़ाने वाला, (**स्वः**) स्वयं सुखस्वरूप और सबको सब सुखों की प्राप्ति कराने वाला है। (**तत्**) उस (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक, प्रकाशक,परम ऐश्वर्यवान् (**वरेण्यम्**) कामना करने योग्य, अतिश्रेष्ठ (**भर्गः**) शुद्ध, विज्ञानस्वरूप और अज्ञान, दोष-क्लेश आदि को भस्म करने वाले (**देवस्य**) दिव्यगुणों से युक्त, आनन्ददाता परमेश्वर का (**धीमहि**) हम ध्यान करते हैं, उसको हृदय में धारण करते हैं। (**यः**) जो वह धारण और ध्यान किया हुआ परमेश्वर (**नः धियः**) हमारी धारणावती बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरित करें।

समर्पण

पूर्वोक्त प्रकार से सब मन्त्रों से अर्थविचारपूर्वक ईश्वर की उत्तम प्रकार से उपासना करके निम्न वाक्य का उच्चारण करते हुए प्रभु को समर्पण करें -

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

अर्थ- हे ईश्वर दयानिधे ! (**भवत् कृपया**)आपकी कृपा से (**अनेन जप + उपासना + आदि कर्मणा**) हमारे द्वारा अनुष्ठित इस जप-उपासना आदि कर्म से (**धर्म + अर्थ-काम-मोक्षाणां सिद्धि**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि (**नः सद्यः भवेत्**) हमें शीघ्र प्राप्त होवे।

नमस्कार मन्त्र

इसके पश्चात् निम्न मन्त्र से परमेश्वर को नमस्कार करें -

ओं नमः शम्भवाय च मयोभुवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।२।।

[यजु० अ० १६. । मंत्र ४१]

अर्थ- (**शम्भवाय**) मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्षसुख को देने वाले (**च**) और (**मयोभवाय**) उत्तम सुखस्वरूप तथा उत्तम ऐहिक सुखों को देने वाले परमेश्वर के लिए (**नमः**) नमस्कार हो, हम नमस्कार करते हैं। (**शङ्कराय**) मोक्षसुख को करने अर्थात् रचने तथा रच-रच कर देने वाले (**च**) और (**मयस्कराय**) उत्तम ऐहिक सुखों को करने अर्थात् रचने तथा रच-रच कर देने वाले परमेश्वर के लिए (**नमः**) नमस्कार हो। (**शिवाय**) क्लेशों-कष्टों को शान्त करके कल्याण करने वाले (**च**) और (**शिवतराय**) अत्यन्त कल्याणकारी परमेश्वर के लिए (**नमः**) बारम्बार नमस्कार हो। ऐसे प्रभु को हम बार-बार नमस्कार करते हैं।

इति सन्ध्योपासना विधिः